* ओ३म् *

सम्मेलन-कविताञ्जलि

अथवा

जौनपुर-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कवि-सम्मेलनों की चुनी हुई कविताओं का संग्रह।

(प्रथम-भाग)

संग्रह-कर्त्ता—
पुरुषोत्तमलाल।

—*—

सेवा प्रेस जौनपुर में मुद्रित।

प्रथम संस्करण] सम्वत् १९८४ [मूल्य =)

प्रकाशक—
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, जौनपुर।

इस पुस्तक की सब आय सम्मेलन-कोष में दी जायगी

मुद्रक—
हादीहुसेनखां आज़ाद,
सेवा प्रेस जौनपुर



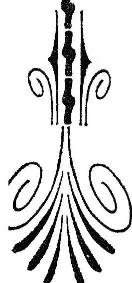


समर्पण

जौनपुर नरेश श्रीमान् राजा श्रीकृष्णदत्तजी दुबे
के कर कमलों में—

राजन्,

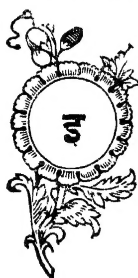
मन्द मधुप मधु मधुर माधुरी खींच मनोहर फूलोंसे,
भर भर अञ्जलि ले आये हैं अति अनुपम रस-मूलोंसे।
हम सब विधि अयोग्य, सेवा में और कौन सी भेंट धरें
आप कृपाकर यही हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार करें॥



विनीत—
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
जौनपुर।



पाठकगण,



न थोड़े से पृष्ठों के विषय में भी दो चार शब्द कहे बिना नहीं रहा जाता। आज इस छोटे संग्रह को प्रकाशित करते हुए हमें बड़ा हर्ष है। श्रीमान् राजा साहब को, जिनकी विशेष कृपा से हमें आप की सेवा में इसे रखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है, हृदय से धन्यवाद है। परम मित्र श्रीयुत रामेश्वर प्रसाद सिंह जी और श्री रामानुजदास जी वकील (सम्मेलन के संरक्षक सदस्य) ने भी उत्साह-पूर्वक यथेष्ट सहायता की है अतः वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। यदि इसी प्रकार कुछ सज्जन ध्यान दें तो इस अभागे प्रान्त में भी हिन्दी का भाग्योदय हुए बिना न रहेगा।

अन्त में हम आप से आशा करते हैं कि आप इस पुस्तिका को अपना कर सम्मेलन का परिश्रम सफल करेंगे।

भवदीय—
पुरुषोत्तमलाल, मंत्री,
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
जानपुर।

चैत्र शुक्ल ४ सं० १९८४

'गले का हार' ।

(मातृभूमि)

बालक—

१—जननी तू तो जन्म-भूमि है, हम सब तेरे ही परिवार,
मातावत् पालन करती है, देती है आनन्द अपार ।
एक दृष्टि तव सब वत्सों पर सुखद सभी को तेरा नाम,
नत मस्तक चरणों पर तेरे, तुझ को बारम्बार प्रणाम ।
२—मातृ, पितृ, पत्नी, सुत, लघु, गुरु, तुच्छ प्रजाजन, नृपतिमहान,
तू सब की प्यारी जननी है, सब हैं तेरी प्रिय सन्तान ।
तव तन-पय-उत्पन्न अन्न से पोषित है हम सब की देह,
जी में उमड़े क्यों न, बता मा, तेरे प्रति स्वाभाविक स्नेह ?
३—भ्रम होता है पर मा, कितनी विस्तृत तेरी मूर्ति विशाल,
सभी ठौर, प्रति रोम सुनाता तेरा शब्द-हीन मृदु ताल ।
फिर मैं कैसे कहूं, 'हमारा केवल गाँव, प्रान्त या देश' ?
भारत, यूरप, सिन्धु, मरुस्थल, सब है तेरा सुन्दर वेश ॥
४—बालक हूं मा, किन्तु, अभी तो केवल प्यारी तेरी गोद,
जहां बिठा मुख चूम लाड़ से नित देती रहती तू मोद
खेल कूद जब लोट पोट कर करना होता है पय-पान
उछल बैठता हूं आकर फिर, पाता हूं पूरा सम्मान ॥
५—आज मलिन मुख क्यों है तेरा ? तू हँसती रहती थी नित्य,
नहीं आज भाता बतला मा, क्यों वह मेरा सुन्दर नृत्य ?
क्या अपराध हुआ मा, मुझ से ? आया तुझ पर संकट कौन?
दुख होता है देख तुझे मा, क्यों दुख से धारे है मौन ?

माता—

६—सुन बेटा, तू तो बालक है, तेरा अभी कौन दूं दोष ?
चिन्ता एक विकट है, जिससे पाता नहीं चित्त सन्तोष-

द्वेष-रङ्ग में जो रङ्ग कर ये लड़ते सब विस्मृत-कर्त्तव्य,
इस में ही अनुरञ्जित होगा तेरा शुद्ध आचरण भव्य !

बालक--

७—अच्छा मा, मत शोक करे तू, देख जगे हैं ये कुछ वीर,
दे आशीष इन्हीं में मिल कर दूर करूं सब तेरी पीर।
स्नेह सूत्र हो, सुमन सुकृतियाँ, ईश-कृपा हो सौरभसार,
तेरे लिये गूँथ ला दूं मा, सुरभित, शुभ्र 'गले का हार' ॥

—पुरुषोत्तम लाल।



सौन्दर्य्य।

हे सौन्दर्य्य महाप्रभु ! तेरी बड़ी विलक्षण माया।
बड़े विचित्र रूप से सब के रहता हिये समाया ॥
सकल जीवधारी जन जग के तुझ पर प्रेम जताते।
कोई कोई तेरे प्रेमी तुझ बिन चैन न पाते ॥
रूप रङ्ग में मिलकर जग में विकट प्रभाव दिखाया।
तेरी समता का आकर्षण खोजे हाथ न आया ॥
स्थूल रूप से शोभा बनकर सब का चित्त चुराता।
सूक्ष्म रूप से हाव भाव बन आनँद स्रोत बहाता ॥
ऐसा विकट प्रभाव प्रकृति ने तुझ को रीझ दिया है।
यंत्र मंत्र जादू टोने का तुझे महन्त किया है ॥
ऐसा अद्वितीय आकर्षण तूने, प्रभु से पाया।
ज़रा झलक अपनी दिखला कर फौरन चित्त उड़ाया ॥

शुद्ध बुद्धि वाले मुनियों पर भी तू ज़ोर चलाता ।
मन मन्दिर में पैठ तुरत ही अपना दास बनाता ॥
चुम्बक का विचित्र आकर्षण है तेरी इक लीला ।
दिल के बेक़रार कर देता तेरा खेल रसीला ॥
है प्रत्येक जीवधारी पर तूने रोब जमाया ।
है सर्वत्र जगत में छाई तेरी अविरल माया ॥
बुद्धि विचार विवेक ज्ञान सब हैं तेरे काबू में ।
फँसी देखते हैं चतुराई तेरे ही जादू में ॥
जो कुछ हम समझे बूझे हैं तू है जीवन उसका ।
जो कुछ हम देखे भाले हैं तू है जीवन उसका ॥
महा कठिनता का है तूने पहना ऐसा चोला ।
बड़े २ विद्वानों ने भी भेद न तेरा खोला ॥
लेख-शक्ति सांकर से तुझ को बांधे ऐसा को है ?
शब्द जाल में तुझे फँसावे ऐसा योधा को है ?
निर्भर नहीं किसी पर तू है, बन्दी नहीं किसी का ।
रूप रङ्ग आकार धरे तू मन भाया निज जी का ॥
मन भावन, महबूब, पियारा, प्रीतम और प्रियाभी ।
इन शब्दों से जो मतलब है वह सब कुछ है तूही ॥
तू है दिव्य पदार्थ विलक्षण नेत्रों को अति भावै ।
नरनारी के मन में तूही विपुल भाव उपजावै ॥
तुझ पर लोट पोट होते हैं जग के प्राणी सारे ।
तू है जहाँ वहीं जाते हैं तन मन नेत्र हमारे ॥
लघु, गुरु, ऊँच नीच का ब्यौरा एक न मन में आवै ।
है सौन्दर्य्य वही जो अपने मन को अतिशय भावै ॥
आनन, अलक, नयन भृकुटी को राखै कौन विचारा ।
जिसके मन में बस्तु चुभी जो वही तुम्हें निरधारा ॥

जिसको जो प्यारा लगता है वहीं वास है तेरा ।
तेरा वास भवन चित के हित है प्रमोदप्रद डेरा ॥
इन्दी वर सम नयन विलोकत भ्रमर बने मन कोई ।
अरुण नयन की छटा किसी को महा मोद-प्रद होई ॥
काली घुँघराली अलकों पर कोई चित्त लगावै ।
भूरी अलक स्वर्णवत् चमकत काहू के मन भावै ॥
शरद चन्द आनन पै कोऊ निज मन करै चकोरा ।
घन समान नीली आभापै बनै बहुत मन मोरा ॥
ऊँचे डील डौल पै कोऊ अपना चित्त लुभावे ।
कितनों ही को देख लिया है ठिंगना तन मन भावे ॥
हे सौन्दर्य्य महा प्रभु ! तुझ से न वह न यह है ख़ाली ।
यह विभिन्नता जगत जनों की है सब केवल ख़्याली ॥
जिस लम्बान मध्य तू राजै वह लम्बान सोहावै ।
जिस चौड़ान मध्य तू विलसै वह सब के मन भावै ॥
जिन नयनों में तू बसता है वे ही सब को भावें ।
लोह समान कठिन चित्तों को चुम्बक सम गहि लावें ॥
तू अपनी अनुपम आभा को जिस मुख में भर देता ।
वही सुमुख वारिज गुलाब को आब मात कर देता ॥
जिस तन में तेरा निवास है वह नेत्रों में झूलै ।
जिस थल में तेरा प्रकाश है वह कब किस को भूलै ॥
वैज्ञानिक लोगों के हित तू है केवल अनुमाना ।
कभी किसी ने तुझ को अब तक नहीं बुद्धि बल छाना ॥
खोज स्वरूपी परिधि मध्य तू अब तक कभी न आया ।
निश्चय रूपी वृत्त मध्य तू अब तक नहीं समाया ॥
जिसने तेरे दरवाजे की ख़ाक नित्य ही छानी ।
उसने ही मित्रों से वर्णी अद्भुत नवल कहानी ॥

जिसने बड़ी विशाल वस्तु से तुझे नहीं पहचाना।
हम कहते हैं उसने तेरा सब महत्व नहिं जाना॥
जिसने लघुता परिधि मध्य है तुझ को ला बैठाया।
हम कहते हैं उस ने तेरा मर्म न पूरा पाया॥
छोटे, बड़े, अधिक कमती पर तेरा मर्म न निर्भर।
टेढ़े सीधे पर निर्भर तू ऐसा कथन असत् तर॥
निर्भर नहीं उचित समता पर, निर्भर नहीं उपज पर।
एक बात पर तुझ को निर्भर करना महा भयंकर॥
तू पाया जाता है जब तब अटल ऐक्य का अङ्गी।
कभी तुझे पाते विज्ञानी बहुतायत का संगी॥
महामनोहारी आभा बन तू प्रियतम में राजै।
साधारण छबि छटा रूप से तू सब ठौर विराजै॥
कहीं उचित समता के मिस से अद्भुत छटा बढ़ावै।
महा विषमता में भी तुझ को तेरा प्रेमी पावै॥
प्रीतम प्रिया मध्य यौवन बन तू उन के मन मोहै।
दोनों हेतु परस्पर जो है, फिर अनंग रति को है?॥
तेरे ही होने से दृग-छबि जादू भरी दिखावै।
तेरे ही होने से कटि छबि बिजली सरिस कँपावै॥
सूक्ष्म रूप से तेरा वैभव प्यारी मुख में पैठा।
बिम्बा रङ्ग धारि के तू ही रहे अधर पर बैठा॥
चंचल चतुर भाव प्यारी के तेरी शान जतावैं।
लज्जा क्षमा उदार भाव भी तेरी आन बतावैं॥
कुटिल कटाक्ष खानि नयनों में तू सुरमा ह्वै पैठे।
मेंहदी रङ्ग व्याज कबहूं तू प्यारी कर पर बैठे॥
बाग़, बुलबुलें, कोकिल, खंजन, कमल, गुलाब हिमंकर।
संबुल, दाख, लता, गुल्लाला नरगिस और सरोवर॥

ये उपमान अगर प्यारी की सुन्दरता न जतावैं ।
दुनियाँ के प्रेमी कवियों को कभी कदापि न भावैं ॥
सज धज रूप कभी तू सोहै कभी निखार अनोखा ।
कभी कभी भूषण बन बैठे कभी सिंगार सुचोखा ॥
तेरे ही कारण नर जग के स्वर्गवास अति चाहैं ।
मन हारी उर्वशी मेनका तेरे रूप वहां हैं ॥
देवांगना परी हूरैं सब तेरे नामान्तर हैं ।
तेरे ही कारण नर जग के शुभ कृति के अनुचर हैं ॥
है बिहिश्त परियों से ख़ाली स्वर्ग अप्सरा हीना ।
ऐसे ठौर और की क्या है अमर चहै ना जीना ॥

लाला भगवान दीन 'दीन' ।



ऊषा ।

सुनहली किरणें छिटक गईं प्रकाशित पल में हुआ दिगन्त ।
प्रकृति को मिली प्रभाकर से प्रभा-अति अनुपम अतुल अनन्त ॥
मनोहर मुक्त पवन माधुरी लगी करने रवि को चञ्चल ।
सहस्रों नेत्रों से अपने निरखने लगा विदग्ध विकल ॥

हुआ जिस दम तम का अवसान ।
लगा होने मृदु कलरव गान ॥
श्रवण कर ज्योत्स्ना का आह्वान ।
प्रकृति ने चटपट दी पट तान ॥

प्रेम का होने लगा प्रदान ।
हुआ पंकज बन मुदित महान ॥
सृष्टि ने पाया पुनरुत्थान ।
हुये जड़ भी सचेत सज्ञान ॥
हटी निशि की चादर काली ।
विहँग बोले डाली डाली ॥
कली ने दी भर २ प्याली ।
मधुर मधु मधुपों ने पाली ॥
निरख लावण्य मयी लाली ।
सजा कर सोने की थाली ॥
प्रकृति पूजा हित छविशाली ।
मुदित हो चला अन्शुमाली ॥

श्री रामानुज दास बी, ए.



दुखिया के आँसू ।

निधन के तुम हो धन अक्षय ।
तुम्हीं तो निर्बल के बल हो ॥
निराश्रय के हो तुम आश्रय ।
अचल को करते चञ्चल हो ॥
नयन नभ में तारा सम जब ।
उदित होते शोभा होती ॥
सुन्दरी सुन्दर दृग में तब ।
चमकते हैं जैसे मोती ॥

अहा! कैसा निर्मल जल है।
स्वच्छ करता मानस काला॥
चयन कर इसी सुमन को सब।
पिन्हाते ममता की माला॥

शान्त करता है शोकानल।
विपद् में धीरज है तुझ से॥
तुम्हारी आभा है उज्ज्वल।
नेत्र की सज धज है तुझ से॥

कभी तू उर की अन्तर्दाह।
कभी तू आशा अकुलानी॥
कभी तू आह कभी तू चाह।
कभी तू आग कभी पानी॥

अनाथिनि! तेरे करुणा रस।
करेंगे निष्ठुर मन को क्षुब्ध॥
यही "दुखिया के आंसू" बस।
करेंगे "दीनबन्धु" को लुब्ध॥

श्री शान्ता देवी श्रीवास्तव "इन्दु"
जौनपुर।

———*———

ब्रह्मचर्य।

मात्रिक छन्द।

इन टूटे फूटे शब्दों से निज बल बुद्धि स्मरण करो–
विश्व–वन्द्य निज पूज्य पूर्वजों का कुछ तो अनुकरण करो।
ब्रह्मचर्य व्रत से विचलित होने का पश्चात्ताप करो–
अपने ऊपर आप कृपाकर अपनी रक्षा आप करो

शिखरिणी छन्द् ।

हमारी चर्य्याएं, सब जगत में उत्तम रहीं—
इसी से फैला था, शुभ-यश हमारा सब कहीं !
नहीं पाले जाते, अब अधम के भी नियम ही—
तभी होते जाते, नित अधम से भी अधम ही ।

* * * * *

हरगीतका छन्द् ।

सौभाग्य ही से हृष्ट पुष्ट मनुष्य निकलेगा कहीं—
हां रुद्रगण सी सृष्टि प्रायः देखलो सब दिन यहीं ।
हा ! पूर्वजन जिन के महात्मा भीष्म से बलवान हों—
उन की जगत में स्वल्प-कायिक, अल्प-व्रय सन्तान हों ?

* * * * *

शार्दूल विक्रीड़ित छन्द् ।

क्यों आचारिक स्वस्थतादि त्रुटियां, होतीं यहां शिष्यमें-
होती हो जिमि साथ साथ यह भी, शिक्षा उसी स्कूल में ।
कोई ही बिरला विमुक्त इस से, होगा कहीं क्षात्र है—
क्या शाला यह भी प्रसाद देती ? या और ही बात है ?

हरगीतका छन्द् ।

शिशुकाल ही में देह के सब जोड़ ढीले पड़ चले !
सब इन्द्रियां भी हो चलीं जड़ दांत क्रमसे झड़ चले !
इस देश में यह नियम सा कुछ सब जगह पाया गया ।
"आने नहीं पाई जवानी चट बुढ़ापा आ गया" ॥
हा ! बालकों की दुर्दशा ऐसी नहीं देखी कहीं—
मुख पर किसी के ओज, छवि, लावण्यता कुछ भी नहीं !

बस ! निरुत्साह, अकर्मता, श्रीभंग इन में देख लो—
जीवित-दशा में मृतक के सब ढंग इनमें देख लो।

* * * * * *

तारंक छन्द।

ब्रह्मचर्य व्रत पालन का जो आदि काल कहलाता है—
वही अधिक से अधिक अन्त अब उसका समझा जाता है
आठ वर्ष के पहिले ही से अब शादी हो आती है-
पालन करने के बदले उसकी जड़ काटी जाती है।

* * * * *

मालिनी छन्द।

विषय-सुख नहीं है व्याह का लक्ष मित्रों !
पर यह कि "हमारे श्रेष्ट सन्तान जन्में"।
प्रिय—पति—पतनी में प्रेम निस्स्वार्थ होवे—
युग—प्रति—बल—द्वारा लोक—यात्रा निबाहें ॥

* * * * *

मात्रिक छन्द।

पहिले ब्रह्मचर्य के द्वारा हो लो ज्ञान, वीर्य सम्पन्न—
तब गृहस्थ बनकर सुयोग से करना शुभ-सन्तति उत्पन्न।
फिर इन्द्रियजित बन कर अपना, औरों का कल्याणकरो-
इस प्रकार हे सिंह सपूतों ! भारत का उत्थान करो।

शिवराम (रमेश) शर्मा 'बिशारद'

——*——

प्रेम की पहिचान ।

प्रेम तू प्रथम हिये पहिचान ।
न कर ऊपर ही ते अनुमान ॥
हो मत मुग्ध सरस बाणी सुन, ना लखि रूप महान ।
हाव, भाव, पर ना रीझे तू, ना वैभव ना मान ।
छिपे रहते प्रिय कुटिल सुजान ।
प्रेम तू प्रथम हिये पहिचान ॥
उनके मीठे ही बचनों से विष-घट के सम जान ।
विपति कसौटी पर अवसर दे, हृदय भाव उर आन ॥
पारखी बन पत्थर पहिचान ।
प्रेम तू प्रथम हिये पहिचान ॥
मूढ़-प्रेम ! तेरे छलने के करते लाख विधान ।
स्ववश पाय वे निज इच्छा वश देते कष्ट महान ।
लाभ के बदले होती हानि ।
प्रेम तू प्रथम हिये पहिचान ॥
ठोक ठठाय यहां लौं लेते मृतिका पात्र सुजान ।
"कमला" तुझको क्रय करना है प्रेमरत्न नादान ।
समझ कर क्यों होता अज्ञान ।
प्रेम तू प्रथम हिये पहिचान ॥

—पं० कमलाकर त्रिपाठी ।

——*——

निशा ।

दिशा फूली निशा के आगमन से, लगे हैं झांकने उडुगन गगन से ।
मलयने आ कली को गुदगुदाया, लिपट कर खूब जूहीको हँसाया ।

निशा आई नशा ऐसा पिलाया, कि सब हैं ऊँघते सबको सुलाया ।
कमल भी सो रहा है मुख छिपाए, झपकियां वृक्ष लेते सर झुकाए ।
सिरिस इमली औ चकवड़ आदि थे जो, सिकोड़े अपने पत्तों को गए सो ।
पवन पानी जो बहता था खड़ा है, नदी नालों में भी सोता पड़ा है ।
विहंग वर पङ्ख में सर को छिपाकर, हैं डूबे नींद में पर को फुलाकर ।
कृषक ने हलको छोडा, बैल हांका, चला घर दूर से बच्चों ने झांका ।
किलक कर दौड वे लिपटे बदन से, निरखती गेहिनी भी थी सदन से ।
दरस पा, दौड़ ला लोटे में पानी, हुई पुलकित वदन वह प्रेम सानी ।
स्वपति चरणों की सारी मैल धोई, परोसी प्रेम से उसने रसोई ।
जगतपति का स्मरण कर उसने खाया, दिवस भर की थकावट को मिटाया ।
उसी परिवार में सब दुखको खोया, मगन हो झोंपड़ी में अपनी सोया ।
सभी सोये निशा का सुख से पा रस, परस जिससे हुआ है इसका पारस ।
उधर सोना ही बस सोना पड़ा है, निशा मद सबकी आँखों पर चढ़ा है ।

—श्री गुरु भक्तसिंह 'भक्त'

——*——

रजनी ।

क्या पशु, क्या जन, क्या जड़ चेतन, तू बस है बसुधा अभिरामा ।
ताप हुआ सब दूर तुझे लख शीतल भूतल है वर बामा ॥
शान्ति हुई अवनी तल में जल में थल में तव हेतु ललामा ।
चन्द्रमुखी बस तू जब है रजनी किस हेतु हुई तब श्यामा ?

—श्री रामानुजदास बी० ए०

——*——

अस्थिर-जीवन।

इस जीवन-बन की कलिका का,
यौवन कितना अस्थिर है!
उसका मधुर मनोहर हँसना,
कैसा--हा! क्षण-भंगुर है!
कैसी कैसी फेनिल लहरें,
मानस-सर में उठती हैं!
देख क्षितिज आलोकित अपना,
हृदय-तंत्रियाँ हँसती हैं।
विषम वायु के झोंके लगते
ही, वह मुरझा जाती है;
कलित, ललित कमनीय कान्ति सब
मिट्टी में मिल जाती है।
यौवन की मदमाती लहरें,
हो जातीं फिर लुप्त कहाँ?
भव्य भावनाओं का सुन्दर गृह,
हो जाता गुप्त कहाँ?

—श्री गंगाप्रसाद "प्रेम"

——*——

हार में ही जीत है।

तू पुरुष होकर न डर आपत्तियों की मार से।
जन्मती है जीत जग में कंठ और कटार से॥
सिर कटाकर जी उठा उस दीप की देखो दशा।
डूब रहा था जो अन्धेरे के निरन्तर भार से॥

पिस गई तब प्रेमिका के हाथ चढ़ चूमी गई।
मान मेहँदी को मिला है प्राण के उपहार से॥
तन दिया पीसा गया अंजन बना तब काम का।
तब उसे रक्खा दृगों में प्रेमियों ने प्यार से॥
लेखनी ने जीभ दी तब वह मिली भाषा उसे।
शक्ति दे जिसने बचाया विश्व को तलवार से॥
प्रेम-पथ में दुःख में सुख हार में ही जीत है।
भक्त को भगवान मिलते हैं हृदय की हार से॥

—पं० रामनरेश त्रिपाठी।

—*—

'उपवन में'

क्या जल थल में वन में जन में तू व्याप रहा है कन कन में।
अपराध तेरा क्या खोज में जो वे भटक रहे हैं वन वन में॥
वेदों में नहीं न कुरान में है तू है केवल निर्मल मन में।
है चमकता इसी से किसी के लिये काँटा भी तेरे उपवन में॥

—पुरुषोत्तम लाल।

—*—

अश्रु।

अहा! आंसुओं की झड़ी कभी मोतियों की लड़ी,
कभी २ लोचन के घन बीच तारे हैं।
विरह बिहार कभी प्रीति पारावार कभी,
कभी स्नेहसार कभी प्रेम के फुहारे हैं॥
दुख के दुकूल कभी सुखसर कूल कभी,
समयानुकूल कभी आग के अंगारे हैं।

मानस के रस कभी, करुणा कलश कभी,
तेरी उपमायें कवि खोज २ हारे हैं ॥

—श्री रामानुज दास बी० ए० ।

———*———

दुखिया के आंसू ।

कह सुरसरि गंगे ! यों समुत्तप्त होके,
प्रकुपित अहिनी ज्यों क्यों कहाँ को चली तू ?
यह कृश तन तेरा आज क्यों हो रहा है !
विपति अनल ज्वाला ने जलाया तुझे क्या ? ॥१॥
भगिरथ नयनों से है बही धार तेरी,
हिमगिरि अथवा है उद्गमस्थान तेरा ?
पर यदि हिम से ही है समुत्पन्न जो तू,
फिर यह इतना क्यों उष्ण है नीर तेरा ? ॥२॥
दुखित हृदय ही तो दुःख से आर्द्र हो के,
टपक टपक चूता नेत्र की गोमुखी से ।
निशिदिन त्रिपुरारी को जटा में रमे जो,
नृप-दृग-जल-धारा का बृहद्रूप सो है ॥३॥
दृग-सरि ! कितनी है रावरी तीव्र धारा,
सुन रव हरि भी थे चौंक के दौड़ आये !
दुख सब दमयन्ती का किया नाश तूने,
शठ मन उस व्याधे को वधा आन ही में ॥४॥
बह कर दुख-त्रस्ता सीय के लोचनों से,
दश-मुख-कुल तीखी धार में था बहाया ।

बह कर नयनों से दुःखिनी द्रौपदी के,
कुरु-कुल-पति का भी मूल ही से नशाया ॥६॥
घर घर विधवायें रो रही हिन्दुओं की,
कर रुदन अछूती जातियाँ ये बिचारीं—
दृग दृग भरती हैं नालियाँ आँसुओं की,
हम सब दुख पाते, क्यों न हो ? ठीक ही है ॥६॥
पर हम शिशु भी तो रो रहे हैं दुखी हो,
सिसक सिसक धारा आँसुओं की बहाते।
दृग-द्वय पथराये व्यर्थ आँसू बहाये,
अब सुधि तुम ही लो वेग ही नाथ ! देखो ॥७॥
—पुरुषोत्तम लाल।

———*———

उर्दू कविता।

कहीं तेग़ ख़म है, तो कहीं है क़लम सिर,
कहीं हरदम ही सितम है सनम की।
कहीं तलवार कहीं खञ्जर विराजमान,
क़ातिल खड़े हैं कहीं मानो मूर्तियम की ॥
तड़प रहे हैं कहीं बिस्मिल बिकल बने,
हसरत देते कहीं हशर की धमकी।
कहीं घुंघराले बाल जाल विकराल बने,
कहीं पै गुलाबी गाल गोलियां हैं बमकी ॥
कहीं कुछ आँसू जमा होके हैं समुद्र बने,
आहों से उठी है धूम्र धारा कहीं ग़मकी।
घायल पड़े हैं कहीं सैकड़ों हज़ारों वीर,
कहीं हैं तलाश मुलाक़ात मरहम की ॥

प्रलय २ चारों ओर घोर शोर हुई,
चितवन रूपी चञ्चला जो कहीं चमकी ।
शायरो ! बताओ कुछ और भी कहोगे कभी,
याकि ख़ून ख़तमें ही शायरी ख़तम की ॥
—श्री रामानुज दास बी० ए० ।



' चंद्रिका सी चमकै '

लमकै लटलंक लली के लगी तनकी तरुनाई तनै तमकै ;
दमकै दुति देहकी दामिनीसी चहुँओर सुगन्ध सनी गमकै ॥
रमकै रमनी रतिरङ्ग रमी झझरीन झरोखन में झमकै ।
ठमकै ठहराय ठगीसी रहै जितही तित चन्द्रिकासी चमकै ॥
—पं० सीताराम उपाध्याय ।



'सीधी अंगुली जम्यो घी कौन काढ़ पायो है'

जौलों कान कसके न वीणा के उमैठे जाँय,
तौलों वह बोलत न बोल मन भायो है ।
काल रूप विकराल भट्टी में न झोंके जौलों,
तौलों कब का ने जड़ लोह पिघलायो है ।
कांटे के प्रयोग बिन निकस्यो है कांटो कहूं,
काटे बिन कदली में फल कब आयो है ।
सीधी सीधी चालन सों कुटिल न सीधे होत,
सीधो अँगुली जम्यो घी कौन काढ़ पायो है ॥

ईश ! देशबन्धु एक के अनेक दीजिये।

दीन के दयाल दीनबन्धु दीनानाथ तुम–
मो सो है न दीन कोऊ कहूं लख लीजिये।
मेरे चित्त रञ्जन को लैके तुम चाहत हो–
निज चित्तरंजन यों स्वारथ न साजिये।
अधम उधारन ! अभागिनी की नैया को यों–
मझधार नाविक विहीन जनि कीजिये।
छीनो एक देश की अनेक आतमा समेत–
ईश ! देशबन्धु एक के अनेक दीजिये॥

—श्री शिवराम (रमेश) शर्मा 'विशारद'।

——*——

'सीधी अंगुली जम्यो घी कौन काढ़ पायो है'

यहि जग बीच ईश सुख, दुख, पुण्य, पाप,
ऊँच, नीच, साँच, झूँठ सकल बनायो है।
चाहिये चलै को खूब समुझि बिचारि नित,
जासों कछु पीछे को परै न पछितायो है॥
सीधन सों सीधे और टेढ़ेन सों टेढ़ो रहै,
गुन अवगुन को करै न मन भायो है।
सीताराम सहज सरै न सब काम सदा,
सीधी आँगुरी जम्यो घी कौन काढ़ि पायो है॥

—पं० सीताराम उपाध्याय।

दुति दामिनि की ।

यह सावन शोक नशावन है मन भावन मानिनी भामिनि की ।
दिन द्वैक धरे रहो धीर लला ते चलैगी कला नहि कामिनी की ॥
गरजैं तरजैंगे जब बदरा अन्धियारी महा जुरी यामिनी की ।
गर लागि है आपही आय के धाय सु देखि दशा दुति दामिनी की ॥

—पं० सीताराम उपाध्याय ।

——*——

'रस रंग की तरंगों में' ।

नायिका के नख शिख गाते गाते युग बीते,
खेलते विलासिता दुलारी के उछंगों में ।
काहे को रुचैगी भला औरों के हिये की बात,
मस्त प्यारी प्यारे ही के कोमल प्रसंगों में ॥
कानों को खटकते स्वभाषा औ स्वधर्म, छिपा
मर्म निज स्वत्व का लपेटा इन्हीं रङ्गों में ।
भेद आत्म गौरव का पाओ जब डूबो सखे,
हिन्दी हिन्द प्रेम रस रङ्ग की तरङ्गों में ॥

—पुरुषोत्तमलाल ।

——*——

'रस रंग की तरंगों में'

आपस के दंगों में ही धर्म्म धारणा है बची,
तप और व्रत बचे भूखे भिखमंगों में ।
एकता बची है बस कुत्सित कुसङ्गों में ही,
प्रेम प्रेरणा है बची केवल पतंगों में ॥

सच्ची मोतियां हैं बची दुखिया के आंसुओं में,
मूल्य वाले मणि बचे केवल भुजंगों में ।
विद्या पुस्तकों में बची बुद्धि पालिसी में बची,
वाद्य और गाने बचे कुटिल कुढङ्गों में ॥
धीरता बची है बस भीरुता में भारत की.
वीरता बची है बस भामिनी भ्रूभंगों में ।
माधुरी बची है मद्य मादक के मध्य बस,
कविता बची है तुक कौतुक प्रसंगों में ॥
शान्ति बची श्रान्ति में औ कान्ति बची भ्रान्ति में है,
बची कमनीयता है कामिनी के अङ्गों में ।
मानवीय मन के उमङ्ग की प्रबल धारा,
बची है घृणित रस रङ्ग की तरङ्गों में ॥
—श्री रामानुज दास बी० ए० ।

'ईश ! देशबन्धु एक के अनेक दीजिये'

दारुण दशा को देखि देश की दयानिधान,
दीनता निहारि के दया की दृष्टि कीजिए ।
भीरुता भगाय दीजे भारत निवासिन सों,
साहस अनूपम हिये में भरि दीजिए ॥
बीरता औ धीरता सुदृढ़ता स्वदेश भक्ति,
भाल में हमारे बालकों के भरि दीजिए ।
नाश करिबे के हेतु भारत की दासता को,
ईश देश बन्धु एक के अनेक दीजिए ॥
—श्री प्रसिद्ध नारायण गौड़ ।

'बची खुची लाज आज बीती हिन्दुवाने की'

[राणा पृथ्वीराज राठौर का महाराणा प्रतापसिंह को अकबर की आधीनता न स्वीकार करने के लिये प्रोत्साहन-पत्र]

हिन्दू-कुल-गौरव नरेश देश-प्राण तुम,
कीरति अटल हौ सीसौदिया घराने की ।
सिर लै करन पै फिरत हौ परन हित,
आन तुम्हही ने राखी राजपूती बाने की ॥
मुगल-मतंग-यूथ-दलन-प्रताप-सिंह,
देखो तुम ही हो बचे लाज कुल काने की ॥
केशरी-किशोर ! निज प्रन ते डिगे तो जानो,
बची खुची लाज आज बीती हिन्दुवाने की ।

—पुरुषोत्तमलाल ।

—*—

'विनय'

कर्म योग के दिव्य सुपथ पर मोहन ! मुझे चला जावो ।
विश्व-प्रेम से भरा सुरुचिकर प्याला नाथ ! पिला जावो ॥
सत्य काज संग्राम बीच मर मिटना धर्म सिखा जावो ।
विजय सत्य की हो असत्य पर केवल यही दिखा जावो ॥
विनती यही गगन-नक्षत्र-छवि ! अवगुण भूरि भुला जावो ।
गौरव के गिरि पर चढ़ने का मम प्रण नाथ ! निभा जावो ।
जब मैं विचलित हो जाऊँ तब हँसकर मुझे लजा देना ।
प्यारे ! मेरे मानस में अपनी वह मुरलि बजा देना ॥

—*—

'मयंक के प्रति'

नील व्योम के सुन्दर दीपक ! शीतलता के भव्य भवन ।
उस निर्जन बन में अनन्त की, नीरवता में खिले सुमन ।
आकुलता के सौम्य कलेवर ! मथित-क्षीर--सागर--नवनीत ।
निशा सुन्दरी के भावुक पति ! मेरे मानस के संगीत !
सुर सरिता तरङ्ग माला के, आकुल हृत्कम्पित नाविक ।
धीरे धीरे आओ ! आओ !! आओ !!! सुस्मित बदन रसिक !
विश्ववेदना के दर्शन-पट ! मेरे नयनों के झूले !
आओ ! आओ !! निशानाथ ! चिर दुखित कुमुदिनी भी फूले ॥

—श्री द्वारिका प्रसाद मौर्य्य ।

——*——

"द्युति दामिनी की"

पहिले मन मान कै बैठी भटू सुधि आई न सावन यामिनी की ।
मनुहार न एक हू मान्यो अली, मति ऐसी भई गज गामिनी की ।
'सुप्रसिद्ध' इते मैं अँध्यारी घटा, घिरि औरे करी गति कामिनी की ।
लपटानी सकानी हिये पति के, डरी यों लखिकै द्युति दामिनी की ।

—श्री प्रसिद्ध नारायण गौड़ ।

'जलेंगे'

हे नँद नन्दन ! आप बिना शरणागत के दुख कौन दलेंगे ।
क्या करुणा कर भी कहलाकर यों छलिया बन आप छलेंगे ॥
हाय ! न साथ चले यदि नाथ ! निरन्तर हाथ अनाथ मलेंगे ।
आह नहीं, यह आग बुरी ब्रज के बन बाग तड़ाग जलेंगे ॥

—श्री रामानुजदास बी० ए० ।

'उपवन में'

आज रितुराज निज साज औ समाज सङ्ग,
करत अकण्टक बिहार त्रिभुवन में।
बन बन घन बन, बन देत बन बन,
सुमन हरन मन खिले बन बन में॥
बारिन में बारिन में बारिन की बारिन में,
पवन भवन में सुरभि कन कन में।
जन गन सुमन सुमन ही में विमन में,
"अलख" सुमन है समन उपवन में॥

—अलख नारायण।



'बसन्त रितुराज की'

तरुन सों तरुनी लतायें लिपटी हैं लखौ,
प्रेम सों सँवारे सुघराई सब साज की।
मञ्जरी के भार ते रसाल डाल झूमि झूमि,
पौन सों बत्याय रहीं निन्दा रतिराज की॥
अली नई कलिन पै कैसो है ढिठायो अली,
सकुचीं बिचारी लखौ मारी भय लाज की।
कोकिला सुरीले सुर दै रही सँदेसो सबै,
आज ही अवाई है बसन्त रितुराज की॥

—पुरुषोत्तमलाल।



'मुसुकानी'

नन्द निकुञ्ज में राधिका माधव मोद मनाते रहे मनमानी।
नन्द जी वां पर आये अचानक मोहन बोले उन्हें लख बानी ।
माखन वाली तू छोड़ दे अम्बर दाम के कारण व्यर्थ रिसानी।
यों बृषभानलली मन में छन में सहमी सकुची मुसुकानी॥

—श्री रामानुजदास बी० ए० ।



पुस्तक मिलने का पता—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,

[illegible] ।